अक्तूबर–दिसम्बर, 2011 मूल्य 2.00 रूपये

उन्नत कृषि

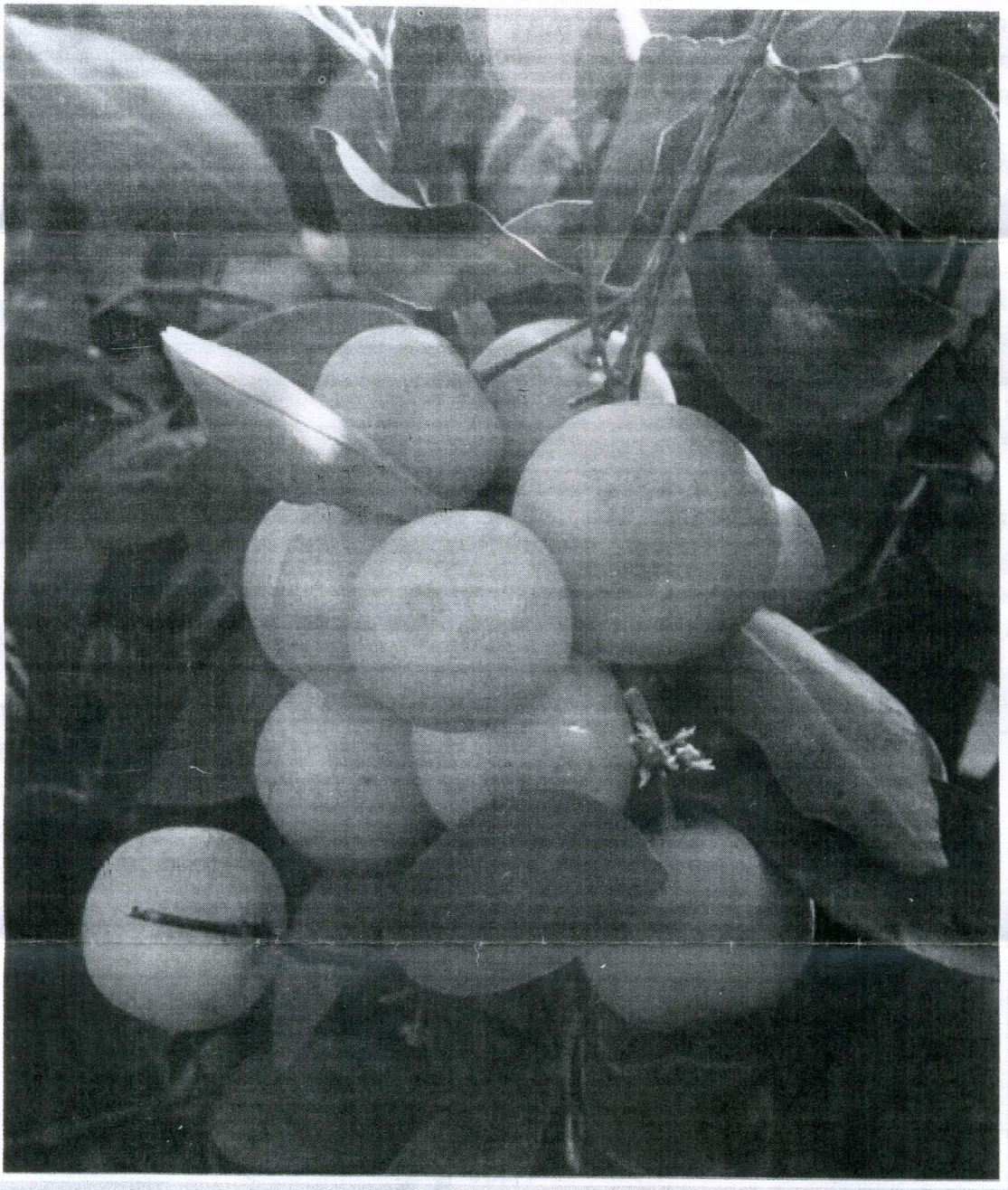

उन्नत कृषि

वर्ष 49, अंक 4 अक्तूबर –दिसम्बर, 2011

मूल्य: एक प्रति 2.00 रूपये

पर्वतीय क्षेत्रों में ग्लेडियोलस की उन्नत खेती के गुर 3
डा. मस्त राम धीमान

फूलगोभी की वैज्ञानिक खेती 6
डा. प्रीतम कालिया

नींबू वर्गीय फलों के प्रसंस्करण अवशेषों से तैयार उत्पाद 8
डा. राम रोशन शर्मा, स्वाति शर्मा एवं मो. जमील झालेगर

आम के प्रमुख रोग व कीट एवं समेकित प्रबंधन 10
डा. संगीता पाण्डेय

लीची का वैज्ञानिक उत्पादन 13
डा. संजय कुमार सिंह एवं डा. विशाल नाथ

बागों में ड्रिप सिंचाई पद्धति का महत्व व उपयोग 17
डा. राजबीर सिंह एवं डा. राम रोशन शर्मा

ऐसे रखें फूलों को ताज़ा 20
डा.ऋतु जैन

सेब में तना कैंकर का बढ़ता प्रकोप 22
डा. हरे कृष्ण एवं डा. बृज लाल अत्री

फल एवं सब्जियां : कार्यात्मक पदार्थों का भंडार 24
कृष्ण कुमार पटेल

ऐसे बढ़ायें पेड़ी गन्ने की उपज 27
डा.ए.के.साह, डा. ओम प्रकाश एवं डा. एस.एन.सिंह

सब्जी फसलों में पौधशाला प्रबंधन 30
जगत सिंह, विजय पाल पंधाल एवं एस. के. ठकराल

निदेशक (कृ सू)
मुजाहिद काज़मी
सहायक सम्पादक
किरन बाला
उप सम्पादक
सुधीर कुमार
मुख्य कलाकार
आर. एच. रिज़वी
वरिष्ठ कलाकार
आनन्द

संपादकीय

भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है और यही कारण है कि यहां लगभग 52 प्रकार के फल उगाये जाते हैं। देश में उगाए जाने वाले ज्यादातर फलों की उत्पादकता अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। सभी प्रकार के फलों में भी नींबू वर्गीय फलों की बहुतायत है जिसमें संतरा, नारंगी, चकोतरा, नींबू आदि प्रमुख हैं। आंकड़े दर्शाते हैं कि लगभग 9 प्रतिशत क्षेत्र में नींबू वर्गीय फल उगाये जाते हैं। प्रति हेक्टेयर उत्पादकता कम होने के कारण इसे और बढ़ाये जाने की आवश्यकता है।

फल मानव आहार में विशेष स्थान रखते हैं। फल अत्यन्त पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों से भरपूर होने के कारण देश के प्रत्येक हिस्से में उगाये जाते हैं। विकासशील देशों के तुड़ाई उपरान्त उचित प्रबंधन के अभाव में फल उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा क्षतिग्रस्त हो जाता है। इतने कठिन परिश्रम से पैदा किये गए फलों का तुड़ाई उपरान्त खराब हो जाने से फल उत्पादकों को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है।

नींबू वर्गीय फलों के प्रसंस्करण उत्पाद के लिए काफी काम हुआ है और ऐसे मूल्यवर्धित उत्पाद तैयार किये गए हैं जिनकी अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पर्याप्त मांग के साथ लोकप्रियता भी है। वर्तमान में फलों की डिब्बाबंदी के बाद बचे अवशिष्टों का भी उपयोग होने लगा है। नींबू वर्गीय फलों के छिलकों से जैम, जैली, मार्मेलेड व पैक्टिन तैयार किया जाता है जिनका प्रयोग प्रसंस्करण उद्योग में किया जाता है।

नींबू वर्गीय फलों के छिलकों से उपयोगी पैक्टिन निकालने के लिए उद्योग लगाये जा सकते हैं। सेब के पोमेस तथा नींबू वर्गीय फलों के छिलकों को सुखा कर पशुओं के लिए चारा सामग्री तैयार की जा सकती है। ये सूखे उत्पाद कार्बोहाइड्रेटस का भरपूर स्रोत हैं जो पशुओं के लिए अत्यन्त लाभदायक हैं। बेकार समझ कर फेंकी जानी वाली सामग्री से बहुमूल्य उत्पाद तैयार करके हम अपने पर्यावरण को दूषित होने से बचा सकते हैं।

पत्र व्यवहार का पता

निदेशक (कृ सू)

विस्तार निदेशालय, कृषि मंत्रालय, कृषि विस्तार सदन, सी.टी.ओ. परिसर, पूसा, नई दिल्ली-110012, फैक्सः (011) 25849881

पत्रिका में दिये गये विचार विस्तार निदेशालय, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार के नहीं अपितु लेखकों के हैं।

सेब में तना कैंकर का बढ़ता प्रकोप

डा. हरे कृष्ण एवं बृज डा. लाल अत्री
केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान-क्षेत्रीय केन्द्र
मुक्तेश्वर-263 138, जिला-नैनीताल (उत्तराखण्ड)

उत्तराखंड में अनेक शीतोष्ण वर्गीय फल उगाए जाते हैं उनमें सेब प्रथम स्थान पर आता है और यहां का ही सेब उपभोक्ताओं को सबसे पहले उपलब्ध होता है। उत्तराखंड में लगभग 31, 662 हेक्टेयर क्षेत्र में सेब की बागवानी करने पर 1,27,503 मीट्रिक टन की पैदावार प्राप्त होती है । सेब उत्पादक राज्यों में सेब की उत्पादकता उत्तराखण्ड में ही न्यूनतम है जबकि इस राज्य में वृद्धि की असीम सम्भावनाएं हैं । कम उत्पादकता के अनेक कारणों में तना कैंकर रोग का होना प्रमुख है ।

कारण एवं लक्षण

यह रोग जिस गति से सेब के बगीचों में फैल रहा है उससे यही प्रतीत होता है कि बाज़ार में उपभोक्ताओं को सबसे पहले उपलब्ध होने वाला उत्तराखण्ड का सेब धीरे-धीरे मिलना कठिन होता जायेगा । एक सर्वेक्षण के अनुसार 75-85 प्रतिशत सेब के बगीचे इस व्याधि से ग्रसित हैं। तना कैंकर रोग मुख्यतः बोट्रियोंस्फेरिया रिबिस एवं कोनियोथिसियम कोमेटोस्पोरम नामक फफूंद द्वारा होता है जिनसे क्रमशः भूरा एवं काला तना कैंकर होता है। भूरा तना कैंकर शाखाओं एवं टहनियों पर लगे हुए घावों अथवा धूप से जले भागों द्वारा तने में प्रवेश करता है । प्रारम्भ में यह छोटा पिचका हुआ और बैंगनी किनारों वाले लाल-भूरे घावों के रूप में विकसित होता है । वृक्षों की ग्रसित छाल थोड़ी दब जाती है और कभी-कभी इस पर फफोले भी विकसित हो जाते हैं जिनसे अक्सर पानी जैसा द्रव्य भी घावों पर बहता है। ग्रसित छाल नारंगी आभा लिए भूरे रंग की ढीली एवं कागजी हो जाती है । छाल के नीचे की काष्ठ उत्तकक्षायित और गहरे भूरे रंग की हो जाती है । ग्रसित भाग से ऊपर की छोटी शाखाएं झुर्रीदार हो जाती हैं जो संक्रमण बढ़ने पर सूख भी जाती हैं।

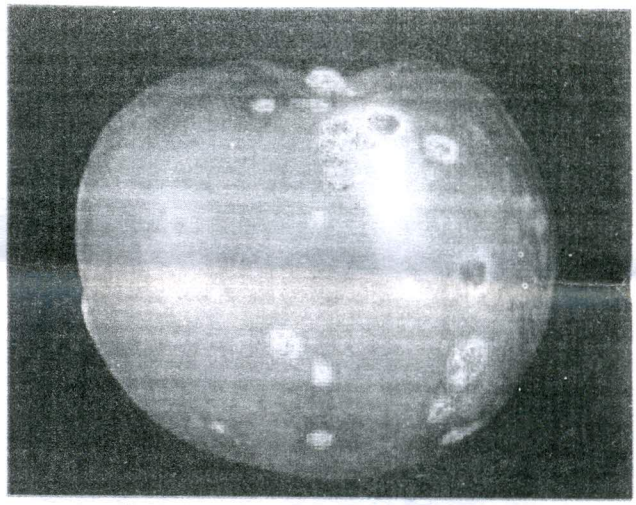

काला तना कैंकर के संक्रमण से शाखाओं की छाल फटने लगती है और उनमें सूखा रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। संक्रमित शाखाओं पर बैंगनी आभायुक्त उभरे हुए फफोले विकसित होते हैं जो बाद में सूख जाते हैं। शाखाओं की छाल पर लम्बे, उर्ध्वाधर दरारें बनती हैं जिनमें काला पाऊडर होता है। संक्रमण की प्रारम्भिक अवस्था में कैंकर की वजह से रोगग्रस्त शाखाएं शीघ्र ही मर जाती

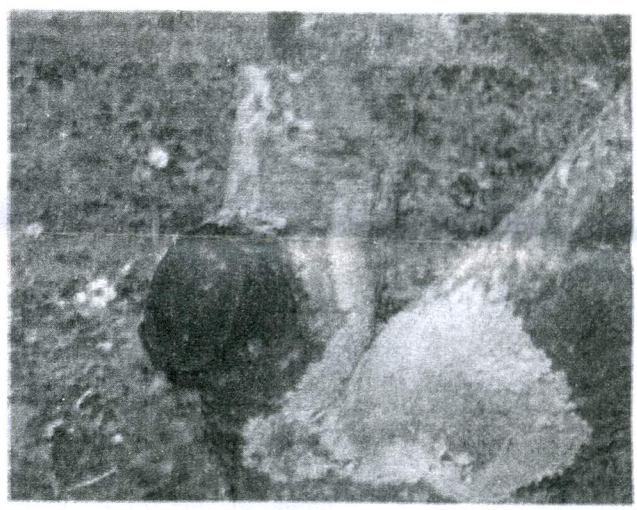

हैं । भूरा तना कैंकर की भांति काला तना रोग भी पौधों के घावों द्वारा ही तने में प्रवेश पाता है । कम जल संचयन क्षमता वाली हल्की मृदा एवं पोटाश की कमी इस व्याधि के प्रकोप को बढ़ाती है ।

सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि प्रायः सेब उत्पादकों को रोग की सही पहचान उनके द्वारा होने वाले प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष नुकसान तथा उचित प्रबन्धन के बारे में समुचित जानकारी नहीं है जिसके कारण यह रोग धीरे–धीरे स्वस्थ पौधों एवं बगीचों में भी फैल रहा है। कैंकर सामान्यतया कमजोर पौधों पर विकसित होता है । अतः यह आवश्यक है कि ऐसे प्रबन्धन उपाय अपनाये जाने चाहिए जिनसे पौधों को स्वस्थ अवस्था में निरंतर बनाए रखा जा सके ।

पर्वतीय क्षेत्रों की मृदा बलुई–दोमट होती है जिनमें पोषक खनिज तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं होती इसके अतिरिक्त रसायनों के उपयोग से जो कैंकर के संक्रमण को कम करते हैं इस रोग को पूरी तरह नियंत्रित करने में कारगर नहीं है । रोग से होने वाले नुकसान का आंकलन करना भी कठिन है क्योंकि अन्य रोग प्रत्यक्ष रूप से फलों को ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं जिससे किसानों को वित्तीय हानि होती है । इसके विपरीत तना कैंकर रोग परोक्ष रूप से बगीचे से होने वाले उत्पादन को पेड़ों की वृद्धि और उत्पादकता को कम कर प्रभावित करता है । कभी–कभी यह रोग अन्य संबंधित रोगों के लिए भी कारक सिद्ध हो सकता है जैसे भण्डारण के दौरान फल–गलन। यदि इस रोग को अनियंत्रित ढंग से बढ़ने के लिए छोड़ दिया जाए तो कुछ ही समय में यह पूरे बगीचे में पेड़ों को सुखाकर व्यापक स्तर पर बरबादी कर सकता है ।

नियंत्रण की विधियां

इस रोग से बचाव हेतु सेब के बगीचों में एकीकृत प्रबन्धन की व्यवस्था अपनानी चाहिए जिसके लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है:–

- रोगग्रस्त शाखाओं, टहनियों एवं पूरी तरह से सूखे वृक्ष को काटकर भूमि में गहराई में दबा दें अथवा जलाकर नष्ट कर दें। यदि संक्रमण मुख्य तने पर हो तो ग्रसित भाग को स्वस्थ उत्तकों तक खुरच कर निकाल दें । तत्पश्चात् घाव पर फंफूदीनाशकों बोर्डो अथवा चौबटिया पेस्ट का लेप करें।
- शीत ऋतु में काट–छांट के तुरन्त बाद घावों पर बोर्डो लेप या चौबटिया पेस्ट का प्रयोग अवश्य करें ।
- जाड़ों में पत्तियां झड़ने के पश्चात् ट्री स्प्रे आयल (2–3 प्रतिशत) और ब्लाइटॉक्स (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव पूरे बगीचे में अवश्य करें ।
- पौधों को उचित मात्रा में पोषक तत्व दिए जाने चाहिए विशेषकर पोटाश। उर्वरक देने से पहले मृदा की जांच करवा लें ।
- पौधों को सतत ओजस्वी एवं स्वस्थ बनाए रखने के लिए उन्हें लाभदायी सूक्ष्मजीवों जैसे माइकोराइजा फफूंद से भी उपचारित किया जा सकता है । केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, मुक्तेश्वर में किए गये अनुसंधान में पाया गया कि माइकोराइजा फफूंद के उपयोग से सेब के पौधों में ज्यादा वृद्धि हुई तथा उन पर कैंकर का प्रकोप भी अपेक्षाकृत काफी कम रहा ।
- आवश्यकता है कि उत्तराखण्ड के सेब के बगीचों में विकराल रूप धारण करते हुए इस रोग के प्रबंधन हेतु समय रहते आवश्यक कदम उठाए जाएं । अतः यह नितांत आवश्यक है कि कृषकों में इस रोग के प्रति जागरूकता लाई जाए तथा इसके नियंत्रण के समुचित वैज्ञानिक उपायों को अनुसरित किया जाए ।